Mind and Society ISSN 2277-6907
Vol 09, No. III&IV,Sep. & Dec.2020, Page No. 53 to 56

कांकेर में रियासत कालीन जनजातीय समाज की परम्परागत लोक शिल्प कला का ऐतिहासिक महत्व

*सुधा खापर्डे
**चेतन राम पटेल

Received	Reviewed	Accepted
24 Nov. 2020	30 Nov. 2020	04 Dec. 2020

वर्तमान स्वरुप में सामाजिक संरचना एवं लोक शिल्प कला में कांकेर रियासत कालीन युग में जनजातीय समाज की आर्थिक संरचना में लोक शिल्प कला एवं शिल्प व्यवसाय में जनजातीयों की वास्तविक भूमिका का एवं शिल्प कला का उद्‌भव व जन्म से जुड़ी कुछ किवदंतियों को प्रस्तुत करने का छोटा सा प्रयास किया गया है। इस शोध पत्र के माध्यम से शिल्पकला में रियासती जनजातीयों की प्रमुख भूमिका व हर शिल्पकला किस प्रकार इनकी समाजिकता एवं संस्कृति की परिचायक है एवं अपने भावों को बिना कहे सरलता से कला के माध्यम से वर्णन करना जैसे इन अबुझमाड़ियों की विरासतीय कला है। इस शिल्पकला के माध्यम से इनकी आर्थिकता का परिचय भी कराने का सहज प्रयास किया गया है।

वर्तमान तक परम्परागत सामाजिक संरचना एवं शिल्प व्यवसाय की अर्थसंरचना का विकासात्मक स्वरूप में विश्लेषण प्रस्तुत करना है। इस शोध पत्र के प्रस्तुतीकरण का उद्‌देश्य भारत वर्ष के छत्तीसगढ़ राज्य के कांकेर रियासत कालीन युग में जनजातीय क्षेत्र के प्राचीन समय से मराठा ब्रिटिश काल में जनजातीय समाज में छत्तीसगढ़ की त्रिशद जातीय समुदाय की भांति धार्मिक तथा सांस्कृतिक उन्मुखीकरण का जो परिर्वतनशील रूपरेखा वह जनजातीय समाज की परम्परागत गतिशीलता का परिर्वतनशील रूपरूप था। जिसकी महत्ता को स्थापित करना उद्येश्य है ।

''निरंजन महावर'' के आलेख आईस एण्ड क्रॉफ्ट से छत्तीसगढ़ तथा लाला जगदलपुरी के ग्रंथ बस्तर का इतिहास एवं संस्कृति में लोक सामाजिक पृष्ठभूमि मे राष्ट्रीय चेतना एवं सामाजिक राष्ट्रीय समरसता के कलात्मक स्वरूप के वर्णन का अनुसंधान की क्षेत्रिय शोत्र विश्लेषण पद्यति का अनुसरण किया गया है।[1] ठीक उसी क्षेत्रीय सामाजिक ऐतिहासिक अनुसंधान पद्यति का अनुसरण करते हुए कांकेर पूर्व रियासतीय युग के जनजातीय लोक समाजय की शिल्प व्यवसायिक गतिशीलता का आधुनिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण एवं उसकी महत्ता को रेखाकिंत करना भी इस शोध पत्र का आशय है।

बस्तर वस्तुतः जनजातीय समाजों का एक समुच्चय है, जहां गोंड तथा उसकी उपजातियॉ मुरिया, माड़िया, हल्बा, परजा, दोरला, गदबा, भतरा इत्यादि जातियां प्रमुख रूप से निवास करती है। जो कि रियासत कालीन युग में भी अपनी परम्परागत शिल्पकला के द्वारा रियासत काल में अपनी अहम भूमिका का भान कराती है।[2] इन जातियों द्वारा अपनी संस्कृति एवं जातीय आधार पर विभिन्न कलाओं को नये–नये प्रयोग के माध्यम से एवं कुछ प्राकृतिक उदाहरण के द्वारा सीख लेकर विभिन्न परम्परागत कला को नया आकार दिया है,जो कि भारत में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी सराहनीय है। इनकी कला की पारदर्शिता व आकर्षकता एवं स्पष्ट कलाकृति सहज ही जन समुदाय को अपनी ओर आकर्षित कर ही लेती है। बस्तर कांकेर में कला एवं संस्कृति का अभूतपूर्व उत्कर्ष रहा है।[3]

**शोधार्थी बस्तर विश्वविद्यालय जगदलपुर (छ.ग.)*
***शोध निर्देशक शास. इंदरू केंवट कन्या महाविद्यालय, कांकेर (छ.ग.)*

जनजातीय समाज की लोक शिल्प कला बहुत ही सुन्दर है तथा इनमें विशेष रूप से इनके विचारों की स्पष्ट कृति प्रत्यक्ष दिखाई पड़ती है। प्रत्येक जनजातियों की कला का उद्‌भव एवं जन्म से कोई न कोई घटना जुड़ी है, हर एक नयी घटना नयी कला के जन्म का बखान करती है, जो कि समाज के विभिन्न अवसरों पर जरूरत के अनुसार उपयोगी एवं आवश्यक सी प्रतीत होती है। इन शिल्प कलाओं के जन्म एवं उद्‌भव के विषय मे यहां पर कई किवद्‌तियां है। हर शिल्प नयी शिल्प कला के जन्म से जनजातीय मानवों का विकास अत्यधिक तेजी के साथ हुआ और नयी–नयी जानकारियां प्राप्त होती गई और प्रयोग के नये तरीके भी सीखने को मिलते गये जिससे शारीरिक विकास के साथ ही मानसिक विकास भी रफ्तार ले चुका है।

कांकेर की जनजातीय मुख्य लोक शिल्प कलायें

बस्तर क्षेत्र के कांकेर जिले की जनजातीय मुख्य लोक शिल्प कलायें निम्नलिखित हैः

घड़वा शिल्प[4]
लौह शिल्प,
मिट्‌टी शिल्प,
काष्ठ शिल्प,
बॉस शिल्प,
गांडा पाटा(गांडा समुदाय के द्वारा निर्मित कपड़ा)
लोक चित्र,

घड़वा शिल्प

घड़वा शिल्प की उत्पति के विषय में घड़पा शिल्पी ''राजन्द्र बघेल'' कहते है घड़वा शिल्प कला काफी पुरानी कला है, यह आदिमानव के समय से ही अस्तित्व में आ गया था, किन्तु उस समय पीतल का काम नहीं हुआ करता था पहले लोहे का काम हुआ करता था। लकडी का काम हुआ करता था। शुरूवात में छोटे–मोटे सामान को ठोक–पीट कर बनाया जाता है, फिर बाद में आग की जानकारी होने से धातुओं को गलाकर जॉच में ढालकर विभिन्न आकृतियों का निर्माण किया जाने लगा था।

रियासत काल में राजा महाराजाओं की आदेश के अनुसार सोने–चांदी आदि की कला कृतियॉ, बर्तन आदि को बनाया जाता था। मुर्तियां, आभूषण, मुखौटे इत्यादि का निर्माण किया जाता था। सामान्य जन के लिए हल्की धातुओं का और रियासती लोगों के लिए सोने–चॉदी की धातुओं को उपयोग लिया जाता था।[5]

लौह शिल्प कला

लौह शिल्प कला रिसायती काल में जनजातीय लोगों की परम्परागत कला की है, और आर्थिक संरचना की सुदृढ़िकरण का माध्यम भी है, इस शिल्पी कार्य में लोहे धातुओं को गलाकर विभिन्न प्रकार के आभूषण, अस्त्र–शस्त्र का निर्माण किया जाता था।

बस्तर के कई लौह शिल्पियो से बातचीत में यही बातचीत से यही बात उभर कर सामने आयी सर्वप्रथम लोहे का उपयोग आखेट करने और आत्मरक्षा के लिये अस्त्र–शस्त्र आदि बनाने में हुआ। इसके बाद बारी आयी घरेलू और कृषि प्रयोजनों के लिये लोहे से बने उपकरणों के प्रयोग किये। फिर देवी–देवताओं के पूजन में उपयोग की वस्तुए शांतिकाल में संगीत तथा विवाह आदि संस्कारों में उपयोग हेतु विविध प्रकार के उपकरण भी बनाये जाने लगे। लौह शिल्प के पारम्परिक उत्पादों को निम्नलिखित भागों में बॉटा गया है :–

घरेलू एवं कृषि उपकरण
देव–पूजन के उपकरण,
अस्त्र–शस्त्र,
वाद्यय यंत्र,
सांस्कारिक सामग्री,
श्रृगांरिक वस्तुएं,

पाषाण युग की बात है, तब आदिमानव पत्थर के अस्त्र–शस्त्र और औजार से काम चलाता था । एक दिन वह आखेट पर निकला पाषाण के औजार से हिरण का मारा वह वहीं गिर पड़ा वही पर दीमक की खुट उस पर पड़ी व आग जलाने पर हिरण का मॉस तो जल गया पर उसकी हड्‌डियों में दीमक की खुॅट दो धातु पिघलाकर किसी आकृति का रूप ले लिया तब से लौह धातु के बारे में ज्ञात हुआ।''

शिल्पकला में जनजातीय पुरूषों के साथ महिलाओं की भुमिका भी महत्पपूर्ण स्थान रखती है । लौह धातु के आगमन से सभ्यता को नवीन विकास की धारा का मार्ग अपना लिया एवं समाज की गतिशीलता में एक अलग स्थान बनाने का प्रयास किया।

मिट्‌टी शिल्प

मिट्‌टी शिल्प के विषय में असमर के वरेण्य साहित्यकार लाल जगदलपुरी ने कहॉ है ''वैसे तो अंचल में कमर–छठ, जन्माष्टमी और गणेश चतुर्थी के अवसरों पर विभिन्न लोक पूजा के लिए प्रतिवर्ष निर्मित होती आ रही, परन्तु

पोला के अवसर पर कुम्हारो द्वारा तैयार किये गए मिट्टी के खिलौने बच्चों को बेहद पसंद आते है । पोला प्रतिवर्ष भादो की अमावश्या को मनाते है। पोला में बैल, हाथी, घोड़ा, बंदर और चूहे के आकार विशेष रूप से पसंद किये आते है। पोला के अवसर पर कुम्हार लोग लड़कियों के खेलने के लिये कौडी–बुची मुहैया करते है। इस अंचल के कुम्हार विभिन्न प्रकार के मृत्तिका, पात्र, दीपक, दीप–स्तम्भ आदि तो बनाते ही है, साथ–साथ वे मृदंग, ढोलक, नगाड़ा आदि वाद्यो के ढॉचे की मिटटी से तैयार करते हैं।[8]

मिट्टी शिल्प की उपयोगिता आदिवासी एवं लोक जीवन में आरम्भ से हो रही है, और आज भी यह अपनी अनवार्य उपस्थिति मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक के सभी प्रसंगो में दर्ज कराता है। मिट्टी सिर्फ जनजातीय समुह के परम्परा का ही नहीं बल्कि समाज एवं देश के विभिन्न वर्गो के विकास का प्रमुख आधार है इस कला में विविधता हो सकती है पर सभी जातिय समुदाय के विकास का यह जमीनीं आधार है।

इस कला के उद्भव के बारे में लोगों से ही सुना है कि पहले कच्ची मिटटी के घड़े बनाये जाते थे, जिसमें पानी भरने पर घुल जाते थे। इसी बीच एक घटना घटी कि एक बड़ा सा लट्ठा पड़ा था उस लट्ठ में दीमक लग गया था उसी लट्ठ से संयोग से आग लग गई और वह लट्ठ जल कर राख हो गया। जिस जगह में दीमक लगा था वहॉ उस दीमक की मिट्टी ने एक गोल आकार ले लिया था। वह आग से पका हुआ था इसे देखकर लोगों ने पाया कि आग में पककर मिट्टी सख्त हो गयी है।

तब से लोगों ने मिट्टी शिल्प को सुरक्षित पाया व मिट्टी की अलग–अलग प्रकार की पारंपरिक आवश्यक कृतियों से सजावट व विशेष अवसरों पर उपयोग में आने वाली आकृतियों का निर्माण किया जाने लगा, सस्ती एवं सरलता से उपलब्धता के कारण इसकी मांग लगातार बढ़ती गई एवं यह कलाकृति आंचलिक ही प्रसिद्धि प्राप्त नहीं कि बल्कि देश–विदेश में प्रसिद्धि प्राप्त की। इनसे बनायी गई कुछ कलाकृति है तेलई–परई, चुकी, मटका, रूखी, कलश, बाग कोंडी–बुची, नांदिया बैला, घोड़ा, सजावटी वस्तु, फुलदान, हाथी, कचिम (कछुआ) इत्यादि वस्तुएं है। जो कि समयानुसार विविध अवसरों पर अपनी अनिवार्यता का एहसास करवाते हैं।[9]

बांस शिल्प

इसी लोक शिल्पकला की अगली कड़ी में बस्तर क्षेत्र की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कला बॉस शिल्प का बस्तर के जनजीवन से जीवन्त संबंध रहा हैं। चाहे वे सुपा, टुकना, गपा, गपली, चरेया, परला आदि घेरलू उपकरण हों, कृषि उपकरण हो या कि आखेट में मिले प्रयुक्त धनुष और तीर। ये सभी बॉस शिल्प की ही देन रहे है। बॉस शिल्प में परम्परिक रूप से जुड़ी जाति का ''**पारधी**'' या ''**नाहार**'' कहा जाता हैं।[11]

बस्तर के आदिवासी एवं लोक जीवन में बॉस के बने विभिन्न उपकरण दैनिक उपयोग में आते रहें है बॉस शिल्प श्रृंगार प्रसाधन की वस्तु के रूप में भी उपयोग रहा है, बांस शिल्प की उपस्थिति बस्तरियों के दैनिक जीवन और पर्व तथा त्यौहारों के साथ वैवाहिक कार्यो में भी बनी ही है। इस प्रकार बस्तरीयों का जीवन बॉस के बिना अधूरा सा प्रतीत होता है, क्योंकि बांस से बनी चीजों से ही उनके जीवन की शुरूवात तीज–त्यौहार, अवसर, विवाह आदि संस्कार में बांस से बनी चीजों का अधिकांशतः उपयोग तो किया जाता है साथ–ही साथ इनकी सुंदर निर्माण कला के कारण देश विदेश में भी इन कृतियों की मांग बनी हुई है।

गांडा पाटा (गांडा समुदाय के द्वारा निर्मित कपड़ा)

गोंड जनजाति के उपजाति ''गांडा'' द्वारा गांडा पाटा (गांडा समुदाय के द्वारा निर्मित कपड़ा)का निर्माण किया जाता था। इन कपड़ों का जनजातीय समाज में बड़ा ही महत्व था। कपड़ा बनाने का दायित्व जनजातीय के इष्ट देवता लिंगोने गांडा जाति को दी थी। इनके द्वारा निर्मित कपड़े सम्पूर्ण जनजातीय समाज के लिये महत्वपूर्ण मानी जाती थी।

लोक चित्र

उपरोक्त कलाओं के अतिरिक्त बस्तर की रियासत कालीन जनजातीयों के द्वारा कौड़ी शिल्प लोक चित्र में इनकी सरलता व खुलेपन के कारण लोगों को आकर्षित करते है। इनकी सुंदर व स्पष्ट बनावट सरलता पूर्ण अपने जीवन का चित्रांकन चित्रों के माध्यम से व अन्य कला शिल्प में भी इनकी सरलता का दर्पण लोगों को अनायास ही अपनी ओर आकर्षित करता है।

जनजातियों की शिल्प कला न केवल इनकी विरससतीय पहचान है, बल्कि अब इनके जीवन निर्वाह का भी प्रमुख माध्यम बन चुका है, चूंकि इनके पास जमीन नहीं है, जहां ये कृषि को व्यवसाय के रूप में पाते है इसलिए इन्होने कला

शिल्प के माध्यम से अपने जीवन के निर्वाह का मार्ग बनाया जिसके द्वारा अपना भरण–पोषण तो करते है साथ ही अपनी सभ्यता व संस्कृति का विस्तार भी बिना कहे अपनी कला के माध्यम से सबके सामने स्पष्ट रूप से रखते है ।

चूंकि अच्छी कलाकारी तो है, इससे राज्य में ही नही भारत और भारत के बाहर भी इनकी अलग छवि है, पर इसका लाभ बीच के बड़े व्यवसायी वर्ग उठा लेते है और इनको इनकी मेहनत का उचित पारिश्रमिक नहीं मिल पाता है, फिर भी ये जनजातीय लोग अपनी परम्परा संग संस्कृति के साथ न्याय करते हुये व्यवसाय के रूप में नहीं बल्कि कला के विस्तार के रूप में कार्य करते हुए प्रारंभ से लगे हुए है ।

निष्कर्षः

इस शोध पत्र के माध्यम से जनजातीय लोगों की शिल्पकला तथा शिल्प व्यवसाय की विभिन्न बारीकियों एवं समाज में इनकें स्थान व शिल्पकला के जुडी विभिन्न समस्यों से अवगत कराते हुये उनकी कला और संस्कृति के प्रति और अधिक आकर्षित और जागरूक कराने का छोटा सा प्रयास किया है, चूंकि इनकी कला से जनजातीय संस्कृति, उत्सव, धर्म को सहजतापूर्वक जाना जा सकता है। जनजातीय कला इनकी अपने जीवन तथा समाज पर आध ाारित एक ऐसा दर्पण है, जो लोगों में और गहराई से जानने हेतु प्रेरित करती है, क्षेत्रगत और जनजातीय के विभिन्न वर्गों की एक पृथक–पृथक कला इन्हे स्वतः अलग दिखाती है, जो किसी अलग से पहचान या परिचय की जरुरत नही होती।

जनजातीय समाज की परंपरागत शिल्पकला जहॉ इनके जीवन यापन का मार्ग है, साथ ही यह कला इनकी संस्कृति व सभ्यता के विस्तार का भी एक सार्थक मार्ग जो बिना बोले, कहे ही कलात्मक रुप से लोगों की आकर्षण का केन्द्र है, जिसको आगामी आंचलिक शोध धारणाओं में एक नई दिशा बोध की संकलित हो सके। इसलिए छोटा सा प्रयास किया गया है।

संदर्भः

1 लाला जगदलपुरी, बस्तर लोककला संस्कृति, विश्वभारती प्रकाशन, धनवटे चेम्बर्स, सीताबाड़ी, नागपुर–12, 2011 पृ. –81

2 बेहार, रामकुमार, छत्तीसगढ़ का इतिहास, छ.ग. हिन्दी ग्रंथ अकादमी 2009, पृ. – 42

3 वाल्यानी एवं साहनी, बस्तर का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास (प्रारंभ से 1947 तक), दिव्या प्रकाशन, कांकेर जिला बस्तर (म.प्र.) पृ.– 189

4 हरिहर वैष्णव, बस्तर की आदिवासी एवं लोक हस्त शिल्प परंपरा, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दरियागंज, नई दिल्ली, 2014, पृ. – 19

5 वही, पृ.– 131

6 लाला जगदलपुरी, वही, पृ. –83

7 अलंग, संजय, छत्तीसगढ़ के हस्तशिल्प, अनामिका प्रकाशन, इलाहाबाद, 2015 पृ.–78

8 हरिहर वैष्णव, वही, पृ.– 116

9 लाला जगदलपुरी, वही,पृ. – 82

10 अलंग, संजय, वही, पृ. – 88

11 हरिहर वैष्णव, वही,पृ –240